लेख

बाल घरेलू कामगारों के लिए मध्यम वर्ग की मांग

ज्योति सोनिया धान

बाल घरेलू कामगारों के विषय में नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने कहा है: *यह आर्थिक गरीबी नहीं बल्कि राजनीतिक गरीबी है जो बच्चों को उनके शैक्षिक अधिकारों से वंचित कर उन्हें श्रमिक वर्ग की ओर धकेल रही है। हमारी कार्यवाई का उद्देश्य इस राजनैतिक गरीबी पर हमला होना चाहिए जिससे बच्चों की शिक्षा तक पहुंच व बाल घरेलू कामगारों की बंधुआ मुक्ति हो सके।*

बाल घरेलू कामगार भारत में बाल मज़दूरी का आम पारम्परिक रूप है। बाल घरेलू कामगार उन बच्चों को कहा जाता है जो अपने परिवार से बाहर किसी अन्य घर में नकद वेतन या सुविधा के एवज़ में घरेलू कामों को करते हैं। भारत में 12.6 लाख बच्चे काम करते हैं।

पर बाल घरेलू कामगार बनने के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? कुछ मुख्य कारण गरीबी, वैकल्पिक रोज़गार का अभाव, स्त्री शिक्षा के प्रति मां-बाप का नज़रिया व "बाल घरेलू कामगारों के लिए मध्यम वर्ग की मांग" हैं। गरीबी को परिभाषित करने वाले कारण हैं- कम आमदनी के स्रोत और खाने वाले ज़्यादा, कर्ज़े का भुगतान व कृषि से घटती आमदनी के नतीजतन बाल घरेलू कामगार बनने की मजबूरी। कृषि ज़मीन से परिवार को साल में से आठ महीने आमदनी होती है, बाकी के चार महीने लोग मज़दूरी करते हैं। अकाल या बाढ़ के समय स्थिति और भी बदतर हो जाती है। ऐसी आपदा की स्थिति में माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने से ज़्यादा रोज़गार पर लगाना पसन्द करते हैं। खासतौर से लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता बल्कि उन्हें घरेलू कामगार के रूप में काम करने भेज दिया जाता है। इसके साथ ही सरकारी कार्यक्रमों योजनाओं और कल्याण सुविधाओं की असफलता से पैदा हुई खाद्य असुरक्षा ने बच्चों को काम पर लगने के लिए मजबूर किया है।

मध्यम वर्ग में घरेलू कामगारों की मांग अधिक बौखलाहट का मुद्दा है। औरतों के घर के बाहर काम करने के चलन से घर के काम के लिए पैसा लेकर काम करने वाली घरेलू मददगार की ज़रूरत पड़ती है। पर केवल यही कारण जायज़ नहीं है। अक्सर देखा गया है कि जिन घरों की औरतें बाहर काम नहीं करती उन घरों मे भी बाल घरेलू कामगार हैं। परिवार वाले बच्चों को काम पर रखना ज़्यादा पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें उतने ही काम के लिए बच्चों को बड़ों से कम पैसा देना पड़ता है। यह भी माना जाता है कि बच्चों को नियंत्रित करना आसान होता है। वे आज्ञाकारी होते हैं तथा परिवार की ज़रूरत के अनुसार उन्हें आसानी से प्रशिक्षित किया जा सकता है। बाल कामगार ज़्यादा मेहनती होते हैं। उनमें यूनियन में संगठित होने या मोल-भाव करने की क्षमता भी कम होती है।

आमतौर पर मध्यमवर्गीय परिवार गांव के आसपास या वहां रहने वाले रिश्तेदारों से कम वेतन और खासतौर पर लड़की कामगार दिलाने के बारे में बात करते हैं। मासिक वेतन 200 रुपये से लेकर 1500 रुपये के आसपास ही होता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि लड़की को किस शहर भेजा जा रहा है। अगर काम महानगर में होगा तो वेतन अधिक होगा और अगर वह कस्बाई ज़िले में काम करेगी तो पैसा कम होगा। बच्चों के माता-पिता भी अपनी बेटी को उन परिवारों में काम के लिए भेजना पसंद करते हैं जहां ज़्यादा वेतन मिलता हो।

सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान चलाए जाने पर भी माता-पिता को बच्चों को स्कूल भेजने में कोई रुचि नहीं होती। इस अरुचि का मुख्य कारण है लैंगिक पूर्वाग्रह। क्योंकि माता-पिता भी मध्यम वर्ग की घरेलू कामगार की मांग से परिचित होते हैं इसलिए उन्हें अपनी बेटियों को घरेलू काम करने के लिए भेजने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। नई दिल्ली में झारखंड, छत्तीसगढ़, बिहार और पश्चिम बंगाल से आने वाली लड़कियों का तांता लगा रहता है। दूर दराज़ के आदिवासी गांव से लड़कियां झारखंड के रांची, लोहरदग्गा, खुंटी, गुमला और सिमडेगा ज़िलों में आती हैं जहां उन्हें काम पर रखा जाता है। अन्य राज्यों में भी यही व्यवस्था है।

बाल घरेलू कामगारों को नौकरी पर लगवाने के लिए भी अनेक नियोजन एजेंसियां मौजूद हैं। ये एजेंसियां मालिक व बच्चों के माता-पिता दोनों के बीच बिचौलिये का काम करती हैं। गांव के आसपास घूमकर सबसे ज़रूरतमंद परिवारों का पता लगाती हैं। फिर लड़की को बाहर काम पर लगाने के फायदे बताकर परिवार को प्रभावित करती हैं। इस तरह एक लड़की का गांव से शहर आने का सफ़र शुरू होता है। परिवारों को यह नहीं बताया जाता कि उनकी लड़की को कहां भेजा जा रहा है। एजेंसी को काम पर रखने वाले परिवार से एक महीने का कमीशन मिलता है। चूंकि शहरों के मध्यमवर्गीय परिवार घरेलू कामगारों पर ज़्यादा पैसा खर्च करना नहीं चाहते इसलिए वे बाल घरेलू कामगार को काम पर रखने के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं।

बाल घरेलू कामगार के हाथों तरह-तरह के हिंसा झेलते हैं। उनके साथ बंधुआ मज़दूरों से बदतर व्यवहार किया जाता है। झारखंड के लोहरदग्गा ज़िले में ऐसे मामले सामने आए हैं जहां आदिवासी परिवारों के बच्चे, गैर आदिवासी परिवारों में बंधुआ मज़दूरी करते हैं। इसके पीछे बच्चों के माता पिता द्वारा लिये हुए कर्ज़ का भुगतान होता है।

अब सवाल यह है कि एक पढ़े-लिखे, मध्यमवर्गीय परिवार में इन बच्चों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव क्यों होता है? क्या उनका नज़रिया 'पैसे दो और काम लो'

यूनिसेफ़ के आंकड़ों के अनुसार 35 लाख बाल मज़दूर मौजूद हैं जिनमें 20 से 40 प्रतिशत घरेलू काम करते हैं। बाल घरेलू कामगारों में 80 प्रतिशत लड़कियां हैं। यूएनडीपी की रिपोर्ट में भी दर्ज है कि 40 प्रतिशत घरेलू कामगार लड़कियां हैं जो चौदह वर्ष से कम उम्र की हैं व महानगरों में घरेलू काम करती हैं।

वाला होता है। आठ या दस वर्ष की कोमल उम्र के बाल घरेलू कामगारों के साथ बड़ों जैसा व्यवहार किया जाता है। इनको दिन में लगभग पंद्रह घंटे के आसपास काम करना पड़ता है। बीच में कभी-कभी एक घंटे की छुट्टी मिलती है। बच्चों को कम खाना दिया जाता है और उसे खाने के लिए भी उन्हें अनुमति लेनी पड़ती है। वे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और यौन हिंसा झेलते हैं। क्या एक शिक्षित व्यक्ति का यह विचार हो सकता है कि एक बार बच्चे को काम पर रख लिया तो उसके साथ मनमाना व्यवहार किया जा सकता है?

शिक्षित मध्यमवर्ग परिवारों को इस समस्या के सम्बोधन के लिए एक सकारात्मक पहल करनी चाहिए। अगर एक परिवार गरीबी के कारण अपने बच्चे को काम पर भेजता है तो शिक्षित मध्यमवर्ग का कर्तव्य है कि वे मदद के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाएं। काम कराने के लिए उन्हें अपने घर लाते हुए उन्हें यह देखना होगा कि ये अच्छी शिक्षा और पोषण से वंचित न रहें। यह रवैया बच्चों के गरीबी परिवारों को मदद करेगा और इन बच्चों को देह व्यापार में जाने से सुरक्षा भी प्रदान करेगा।

बाल घरेलू कामगारों की सुरक्षा के लिए सरकार को सख्त कानून बनाने चाहिए। ज़मीनी स्तर पर योजनाओं को पूरी तरह लागू किया जाना चाहिए जिससे गरीबी के कारण श्रमिक बनने से ज़्यादा से ज़्यादा बच्चों को रोका जा सके। अब देखना यह है कि क्या एक दिन ऐसा भी आयेगा जब बाल दिवस-14 नवम्बर पर ये बच्चे भी जश्न मनायेंगे?

साभारः खबरदाता न्यूज़विंग